प्रतिदिन

अच्छे समझौते की ओर

एक लंबी और तल्ख कवायद के बाद भारत और अमेरिका ने अंतरिम व्यापार समझौते का खाका आधिकारिक रूप से संयुक्त बयान में पेश कर दिया है, यह एक उम्मीद भरी पहल है, जिसे अंतिम मुकाम पर पहुंचाने के लिए भारत को बहुत सतर्कता के साथ कदम बढ़ाने होंगे. फिलहाल समझौते का जो प्रारूप सामने आया है, वह तलवार की धार की तरह है, जिस पर अगर संतुलन साधकर न चला गया, तो नुकसान हो सकता है. व्यावहारिक रूप से देखें, तो अनेक उद्योग क्षेत्रों में खुशी है, मगर कृषि और डेयरी जैसे क्षेत्रों में चिंता का आलम है, बहरहाल, यह स्पष्ट है कि भारतीय वस्तुओं पर अमेरिकी शुल्क 50 प्रतिशत से घटकर 18 प्रतिशत हो गया है. साझा बयान के मुताबिक, दोनों देश चुनिंदा उत्पादों पर शून्य शुल्क, बाजार खोलने के उपाय और समग्र रूप से गहरे आर्थिक संबंधों के लिए प्रतिबद्ध हैं. भारत ने अगले पांच वर्षों में 500 अरब डॉलर के अमेरिकी सामान खरीदने की प्रतिबद्धता जताई है, तो यह खरीद इस तरह होनी चाहिए कि भारत को भी लाभ हो. अंतरिम समझौते को अंतिम न माना जाए और भारतीय वाताकार आगे की व्यापार वार्ता में बहुत सतर्कता से भारतीय हितों का संरक्षण कर सकें, ऐसी उम्मीद हर भारतीय को होगी.

कोई दोराय नहीं कि इस समझौते से भारत के भविष्य पर असर पड़ेगा, इतिहास में लिखा जाएगा कि जो समझौता भारत ने किया, उससे देश के किसानों, दुग्ध उत्पादकों को क्या लाभ हुआ? यह भूलना नहीं चाहिए कि भारत एक कृषि प्रधान देश है और हमारा व्यावसायिक ढांचा अमेरिका जैसा नहीं है. हमारी एक बड़ी आबादी गांवों में रहती है, जो अपनी जीविका के लिए कृषि और डेयरी पर निर्भर है. भारत सरकार के लिए असली चुनौती इन्हीं दो क्षेत्रों में होगी और सरकार के आलोचकों की निगाह भी इन्हीं दो क्षेत्रों पर टिकी रहेगी. यही वे दो क्षेत्र हैं, जिनकी वजह से भारत-अमेरिका के बीच व्यापार समझौता हो नहीं पा रहा था और अमेरिका ने भारी टैरिफ भारत पर लाद रखा था. खैर, अन्य अनेक उद्योग हैं, जहां उद्यमी-निर्यातक राहत की सांस ले रहे हैं. श्रम-प्रधान कई क्षेत्रों- वस्त्र और परिधान, चमड़ा और जूते, प्लास्टिक और रबर पर लगने वाले कुल 50 प्रतिशत टैरिफ में 32 प्रतिशत अंकों की कमी आई है. मतलब, भारतीय निर्यातक फिर अन्य देशों से प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति में आ गए हैं, इससे भारतीय निर्यात में निश्चित ही बढ़त दर्ज की जाएगी.चिंताओं से परे अगर देखें, तो अनुमान है कि भारत के लगभग 44 अरब डॉलर के उत्पाद निर्यात को अमेरिकी बाजार में शून्य शुल्क की सुविधा मिलेगी. आश्चर्य नहीं, भारत के वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल इसे एक ऐतिहासिक व्यापार ढांचा और बेहद निष्पक्ष, न्यायसंगत व संतुलित समझौता बता रहे हैं. हालांकि, यह आश्वस्त भाव से नहीं कहा जा सकता कि भारत को इस समझौते से केवल लाभ ही होगा, यदि हम सावधान नहीं रहे, तो अमेरिकी निर्यातक हमें सिर्फ बाजार बना देंगे. भारत के लिए आगे की राह आसान नहीं है, क्योंकि यह समझौता करते हुए शायद हम रूस से कुछ दूर जाते लग रहे हैं. रूस के साथ हमारा संतुलन बना रहे, यह बहुत जरूरी है, हालांकि इसके लिए रूस को भी हमारे प्रति ज्यादा संवेदनशील होना पड़ेगा, उसे ध्यान रखना होगा कि रूसी तेल की आयात की वजह से हमने 25 प्रतिशत अतिरिक्त टैरिफ का जुमार्ना भी झेला है. हमारी कूटनीतिक और रणनीतिक मजबूती ही संतुलित व न्यायसंगत व्यापार समझौतों को साकार करेगी.

सत्ता में कोई आए, चुनौती तो रहेगी

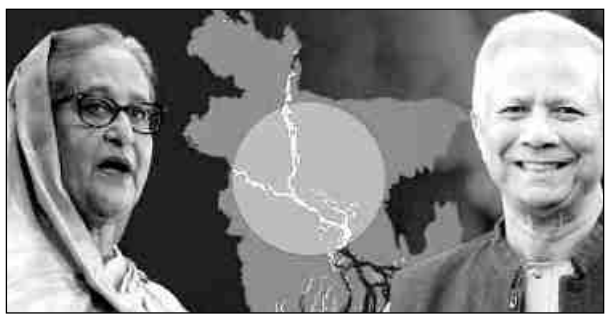

बांग्लादेश में होने वाले चुनाव के स्पष्ट संकेत हैं कि बीएनपी सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरेगी, लेकिन देखना होगा कि क्या वह सुधार व स्थिरता और जनादेश व वास्तविकताओं के बीच संतुलन बना पाएगी, या फिर यह चुनाव देश के अस्थिर इतिहास का एक और विवादित अध्याय बनकर रह जाएगा?

बांग्लादेश इस समय अपने इतिहास के सबसे निर्णायक चुनावों में से एक की ओर बढ़ रहा है. यह चुनाव केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन-सी पार्टियां मैदान में हैं, बल्कि इस कारण भी कि देश की सबसे पुरानी और लंबे समय तक सत्ता में रही पार्टी अवामी लीग इसमें शामिल नहीं है. मोहम्मद यूनुस के नेतृत्व में अंतरिम सरकार द्वारा आयोजित 12 फरवरी, 2026 को होने वाला आम चुनाव तकनीकी रूप से पिछले कई चुनावों की तुलना में अधिक स्वतंत्र व निष्पक्ष माना जा रहा है, इसके बावजूद, अवामी लीग की अनुपस्थिति चुनाव की राजनीतिक समावेशिता तथा नैतिक वैधता पर प्रश्नचिह्न खड़े करती है. यदि बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) सत्ता में लौटती भी है, जैसा कि अधिकांश आकलन संकेत देते हैं, तो उसकी जीत अधूरी और कई लोगों के लिए खोखली प्रतीत हो सकती है.

इस चुनाव की पृष्ठभूमि असाधारण परिस्थितियों से बनी है. अगस्त 2024 में हुए छात्र-नेतृत्व वाले जनविद्रोह ने शेख हसीना के 15 वर्षों के शासन का अंत कर दिया और उन्हें भारत में शरण लेने पर मजबूर होना पड़ा, इसके बाद एक अंतरिम प्रशासन की स्थापना हुई, जिसने जवाबदेही व सुधार का वादा किया.

हिंसक दमन में भूमिका के आरोपों के चलते अवामी लीग पर प्रतिबंध लगाया गया, जिससे राजनीतिक परिदृश्य पूरी तरह बदल गया. हालांकि शेख हसीना के पतन का देश के बड़े हिस्से ने स्वागत किया, पर अवामी लीग को चुनाव से बाहर कर देना इस आशंका को जन्म देता है कि लोकतांत्रिक पुनर्निर्माण राजनीतिक सुधार के बजाय राजनीतिक बहिष्कार के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है. इस बदले हुए राजनीतिक परिदृश्य का सबसे बड़ा लाभ बीएनपी को मिला है. लगभग 17झ18 वर्षों तक सत्ता से बाहर रहने, दमन, जेल और निर्वासन झेलने के बाद पार्टी एक बार फिर सत्ता के करीब दिखाई दे रही है. दिसंबर, 2025 में लंदन से तारिक रहमान की वापसी ने इस पुनरुत्थान को प्रतीकात्मक रूप से मजबूत किया. चुनाव से ठीक पहले जारी बीएनपी का घोषणापत्र गंभीरता, संतुलन और शासन क्षमता दिखाने का प्रयास करता है, इसमें चुनावी सुधार, जवाबदेही, मतदाता की गरिमा और नागरिकों के प्रति उत्तरदायी सरकार की बात की गई है, इसकी भाषा अपेक्षाकृत संयमित है, जो दशार्ती है कि मुल्क का मतदाता टकराव व अस्थिरता से थक चुका है.

घोषणा पत्र में भारत का नाम सीधे लिए बिना बीएनपी ने सीमा हत्याओं, जबरन धकेलने, तस्करी और नदी जल-बंटवारे जैसे मुद्दों को उठाया है, जो लंबे समय से बांग्लादेशझभारत संबंधों में संवेदनशील रहे हैं. तीस्ता और पद्मा जैसी नदियों में 'उचित हिस्सेदारी' की मांग, संयुक्त नदी आयोग को सशक्त बनाने की बात और 'बांग्लादेश पहले' का सिद्धांत दशार्ता है कि बीएनपी नई दिल्ली के साथ रिश्तों को बगैर शत्रुता के पुनसंर्तुलित करना चाहती है, वहीं, चीन का कोई स्पष्ट उल्लेख न होना इस ओर संकेत करता है कि बीएनपी किसी एक महाशक्ति के साथ खुला झुकाव दिखाने के बजाय रणनीतिक लचीलापन बनाए रखना चाहती है. हालांकि बीएनपी की राजनीतिक स्थिति निर्विवाद नहीं है.

जमात-ए-इस्लामी के साथ एकता सरकार से इन्कार कर पार्टी ने इस्लामी राजनीति से दूरी बनाने और घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भरोसा कायम करने की कोशिश की है, यह 2001झ06 के दौर से अलग है, तारिक रहमान का आकलन है कि जमात से खुला गठबंधन शहरी मतदाताओं, अल्पसंख्यकों और विदेशी साझेदारों के बीच पार्टी की स्वीकार्यता को नुकसान पहुंचा सकता है, इसके बावजूद, बीएनपी को हेफाजत-ए-इस्लाम के जमात-विरोधी रुख से अप्रत्यक्ष लाभ मिला है, लेकिन इससे वैचारिक जटिलताएं भी बढ़ी हैं. मुख्य चुनौती जमात-नेतृत्व वाले गठबंधन से है, जिसमें छात्र आंदोलन से निकली नेशनल सिटिजन पार्टी भी शामिल है. जमात ने खुद को नए सिरे से पेश करने की कोशिश की है, और एक हिंदू उम्मीदवार को भी मैदान में उतारा है, फिर भी महिलाओं के अधिकारों और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा को लेकर आशंकाएं बनी हुई हैं. नेशनल सिटिजन पार्टी का जमात के साथ जाना उसकी स्वतंत्र सुधारवादी छवि को नुकसान पहुंचाता है और इससे आंतरिक असंतोष तथा सार्वजनिक संदेह, दोनों बढ़े हैं, राजनीतिक दलों से परे, स्थिरता के असली निर्णायक अन्य संस्थानों में निहित हैं. मुख्य सलाहकार के रूप में मोहम्मद यूनुस एक कठिन संतुलन साधने की कोशिश कर रहे हैं–विश्वसनीय चुनाव कराना, सुरक्षा संभालना और जुलाई राष्ट्रीय चार्टर पर जनमत संग्रह कराना. आलोचकों का मानना है कि आम चुनाव के साथ जनमत संग्रह कराना भ्रम और राजनीतिकरण को बढ़ा सकता है, खासकर तब, जब ऊपरी सदन जैसी प्रमुख सिफारिशें पहले ही बीएनपी जैसे दलों के घोषणापत्र से गायब हैं. बांग्लादेश के इतिहास में सैन्य तख्तापलटों की स्मृति अब भी ताजा है, पर 2024 के विद्रोह के दौरान सेना का संयम एक बड़ा बदलाव था, फिर भी कानून-व्यवस्था की कमजोर स्थिति में सेना की तैनाती और चुनाव के दौरान उसकी भूमिका अनिवार्य है, शेख हसीना के शासनकाल में कथित मानवाधिकार उल्लंघनों के लिए सेवारत अधिकारियों पर मुकदमे सैन्य संस्थान के भीतर असहजता पैदा कर सकते हैं. भावी सरकार को नागरिक-सैन्य संबंधों को सावधानी से संतुलित करना होगा.

मानवाधिकारों का मुद्दा भी चुनावी माहौल को जटिल बना रहा है. अवामी लीग के पूर्व मंत्री और वरिष्ठ हिंदू नेता रमेश चंद्र सेन की हिरासत में मौत ने राजनीतिक प्रतिशोध के आरोपों को हवा दी है, ऐसी घटनाएं अल्पसंख्यकों के बीच भय और असुरक्षा की भावना को मजबूत करती हैं, सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान को लेकर प्रदर्शन, चुनाव बहिष्कार की धमकियां और प्रशासनिक पक्षपात के आरोप बताते हैं कि असंतोष गहरा है, जब लगभग हर प्रमुख पक्ष चुनावी प्रक्रिया पर सवाल उठा रहा हो, तो परिणाम चाहे जो भी हों, उनकी वैधता कमजोर हो जाती है. संकेत स्पष्ट हैं कि बीएनपी सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरेगी, लेकिन जीत अपने-आप में शासन की गारंटी नहीं है.

नई सरकार विरासत में एक खंडित समाज पाएगी. ऐसे में बांग्लादेश के लोकतांत्रिक घावों को पूरी तरह भर पाना कठिन रहेगा, असली परीक्षा सत्ता में आने के बाद होगी–क्या बीएनपी न्याय और संयम, सुधार और स्थिरता तथा जनादेश और संस्थागत वास्तविकताओं के बीच संतुलन बना पाएगी, या फिर यह चुनाव देश के अस्थिर राजनीतिक इतिहास का एक और विवादित अध्याय बनकर रह जाएगा.

आनंद कुमार

मैं जो कुछ भी कहूंगी..

"झुक के मिल रहे है तो....."

अजित दादा का जाना बेहद दुखद था. दादा के निधन के बाद ठीक चौथे दिन सुनेत्रा पवार ने उपमुख्यमंत्री पद के रूप में शपथ ली. भारी मन से ही सही - पर बधाई, शुभेच्छा और अभिनंदन.

समय किसी के लिए रुकता नहीं है, ठहरता नहीं है. जिनकी सुनेत्रा जी अर्धांगिनी थी, उनकी तो दिनचर्या ही सुबह 6:00 से रात 12:00 बजे तक निरंतर चलती रहती थी. ठहरना दादा का स्वभाव नहीं था. अजित दादा को जितना सुनेत्रा जानती थी, उतना भला कौन जान सकता है? पति के आदर्श के अनुसार सुनेत्रा अपने कर्तव्य पथ पर निकल पड़ी हैं. आंखें सुंदर हैं, पर उदास है मन है, पर रिक्तता साफ दिखाई दे रही है.

पर राजनीतिक निष्ठुर होती है और वह यह बात बचपन से ही जानती है, क्योंकि राजनीति उनके लिए, कोई नई बात नहीं है. अजित दादा के भीतर की ऊहापोह, योग्यता होते हुए भी, उन्हें आगे न बढ़ने देना, घात-प्रतिघात. क्या वे समझ नहीं रही थी ? पर उनकी बॉडी लैंग्वेज, उनकी सहनशीलता, सब बताती है कि वे कितनी संस्कारी है !

पर विरोधी लोगों का मुंह चूप रहे ? बंद रहे ? तो फिर वे विरोधी कैसे ? उन्हें अति शहाणे विरोधी कैसे कहा जा सकता हैं? कुछ भीतर के, कुछ बाहर के, लोगों ने आलोचना शुरू कर दी ! इतनी जल्दी क्या थी? हमें बताया तक नहीं ? अरे भाई ... महाराष्ट्र में कहीं राजनीति में पत्ता भी हिल जाता है, कोई छींक भी देता है, तो आपको मालूम हो जाता है और वहिनी के शपथ विधि को आपको पता ही नहीं ? कार में बैठे-बैठे राम-कृष्ण- हरी करके हाथ जोड़कर जो दिल्ली निकल पड़े थे ? वे क्या जताना चाहते थे ?कुछ लोग जो कल तक और आज भी खुद कई प्रकार की आलोचना के शिकार थे? खुद का कोई अस्तित्व राजनीति में नहीं है, वह सलाह देने लगे हैं ? कि राष्ट्रवादी (अजीत गुट) में क्या होना चाहिए? क्या नहीं? उनके निर्णय उनका अंतर्गत मामला है, आप क्यों घुसे जा रहे हो? आपके ही नगर सेवक जो इधर -उधर दौड़ रहे हैं. पहले उन्हें तो संभालिये

बेकार की बड़बड़ करने से ''मौन'' रहना कभी भी उत्तम! पिछले सात - आठ दिनों से सुनेत्रा पवार के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला. न हीं उन्होंने कहीं हल्का पन दिखाया. आधुनिक राजनीति में सुनेत्रा जी की सभ्यता की, संस्कारों की, बराबरी करने वाली नेत्रियां बहुत कम दिखाई देती है.

सुनेत्रा का एक बड़े नेता की पत्नी को शोभा देने जैसा ही व्यवहार रहा है, उनकी वेशभूषा रही है, उस दिन दादा के अंत्यविधि में घर के ही कुछ लोगों का हंसना, बातें करना, सामान्य जनता को बड़ा अखर रहा था.

वहिनी, सतर्क तो रहना होगा, जो आज आपको गूंगी गुड़ियाः बोल रहे हैं वह मूर्ख है, सामान्य जनता के मन में कोई प्रश्न आपको लेकर है ही नही, इसलिए आपको आलोचना से डरना नहीं है. अजित दादा के विश्वासू, आपके भी विश्वासू हर हाल में रहेंगे, हर एक पर संदेह नहीं कर सकते. छिछोरों को बाहर का रास्ता दिखा दीजिए, ***आपके स्त्री शक्ति को स्वीकारने का साहस हर एक अहंकारी पुरूष में नहीं रहेगा, वह उनके वश की बात नहीं होगी. कुछ साल पहले आपको बाहर का पवार बोला गया था, जिसने पूरी जिदंगी परिवार को ही दी, वह बाहर की ही रही?***

''जय और पार्थ'' की रक्षा करनी होगी, जिसमें योग्यता होगी वही आगे जाएगा, उन्हें स्वयं को सिद्ध करना ही होगा, आप भी परीक्षाओं में पास होगी, उम्मीद तो है, फिलहाल आपके विरोधकों को इतना ही कह सकते हैं कि--

झुक कर मिल रहे हैं, तो कमजोर ना समझ, फलदार यदि शाख हो तो, झुकती जरूर है.

प्रो. डॉ. ज्योति व्यास. अमरावती.

ईरान में सत्ता में आए कट्टरपंथी अयातुल्ला ने सभी संभावनाओं को खत्म कर दिया

हिंदू पाकिस्तान क्यों बनाएं?

धर्म और राज्य के मेल का प्रयोग कहीं भी सफल नहीं रहा. पाकिस्तान में इस्लाम को राष्ट्रीय पहचान के केंद्र में रखने से उसके आर्थिक-राजनीतिक भविष्य को नुकसान पहुंचा. जिन धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों पर बांग्लादेश बना, उनसे हटना उसे कमजोर कर रहा है. ईरान में सत्ता में आए कट्टरपंथी अयातुल्ला ने सभी संभावनाओं को खत्म कर दिया.

देश की आजादी और विभाजन के ठीक दो महीने बाद 15 अक्टूबर, 1947 को भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने प्रांतीय मुख्यमंत्रियों को एक चिट्ठी में लिखा था, ह्लपाकिस्तान की ओर से चाहे जितनी उकसावे वाली कार्रवाई की गई हों और गैर-मुसलमानों के साथ चाहे जितनी भी ज्यादतियां और भयावह घटनाएं हुई हों, हमें अपने यहां अल्पसंख्यकों के साथ सभ्य समाज की तरह व्यवहार करना होगा, उन्हें लोकतांत्रिक राज्य के नागरिकों के रूप में सुरक्षा और अधिकार देना हमारी जिम्मेदारी है.

ऐसा नहीं है कि नेहरू की इस विचारधारा से कांग्रेस में सब सहमत थे. पार्टी में परंपरावादी हिंदू सोच रखने वाले लोग भी मौजूद थे. फिर भी प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और जनसंघ द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली हिंदुत्ववादी ताकतों को हाशिये पर रखने की कोशिश करते रहे. नेहरू के निधन के कई दशक बाद आरएसएस और जनसंघ की उत्तराधिकारी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का प्रभाव तेजी से बढ़ा. नतीजा, जो भारत 1947 के बाद अपने पड़ोसी पाकिस्तान से अलग रास्ता अपनाने की उम्मीद कर रहा था, वह आज धर्म को लेकर धीरे-धीरे पाकिस्तान की राह पर है.

गौरतलब है कि पिछले तीन आम चुनावों में भाजपा के टिकट पर चुने गए 800 से अधिक सांसदों में एक भी मुसलमान नहीं है. भाजपा ने हिंदू वोट बैंक तैयार करने की कोशिश की है और कई चुनाव केवल हिंदुओं के समर्थन के आधार पर लड़े और जीते हैं. सत्ता में आने के बाद संघ परिवार ने सामाजिक स्तर पर अपना वर्चस्व मजबूत किया है. एक समय था, जब मुसलमान महत्वपूर्ण कैबिनेट पदों पर होते थे, बड़े सरकारी विभागों का नेतृत्व करते थे (जिसमें विदेश सेवा और इंटेलिजेंस ब्यूरो जैसे संस्थान भी शामिल हैं), सुप्रीम कोर्ट और भारतीय वायु सेना के प्रमुख भी बने. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के गृह राज्य के दो शहरों से मुसलमान सांसद चुने जाते थे, आज सार्वजनिक जीवन में किसी प्रमुख पद पर मुसलमानों की मौजूदगी बेहद कम है.

हिंदू बहुसंख्यकवाद कानूनी मोर्चे पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है. नागरिकता संशोधन अधिनियम और अनुच्छेद 370 का उन्मूलन इस तरह देखा गया कि जम्मू कश्मीर भारत का मुस्लिम बहुल राज्य था. प्रतीकात्मक स्तर पर यह भारत के सबसे बड़े राज्य के मुख्यमंत्री के भगवा कपड़ों में और नए राम मंदिर के उद्घाटन की अध्यक्षता करने वाले प्रधानमंत्री में दिखाई देता है. हमारे सबसे शक्तिशाली राजनेताओं द्वारा दिया गया यह संकेत ऐसा व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जैसे कि वे पहले हिंदू हों और बाद में भारतीय. हिंदुत्व ने लोकप्रिय संस्कृति में भी पैठ बना ली है.जवाहर लाल नेहरू के प्रधानमंत्री रहते हिंदुत्व का प्रभाव कम रहा, लेकिन वह मौजूद हमेशा रहा. नेहरू के बाद की कांग्रेस सरकारों की गलतियों ने हिंदू दक्षिण पंथ को पनपने और फैलने का अवसर दिया, इसमें राजीव गांधी की भूमिका विशेष रूप से दोषपूर्ण मानी जाती है. प्रधानमंत्री रहते उन्होंने एक ओर शाह बानो मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलटकर मुस्लिम कट्टरपंथियों को खुश करने की कोशिश की तो दूसरी ओर बाबरी मस्जिद के पास अयोध्या के एक छोटे से मंदिर के ताले खुलवाकर हिंदू कट्टरपंथियों को संतुष्ट करने का प्रयास किया. इन गलत कदमों पर उस समय पत्रकार नीरजा चौधरी ने चेतावनी दी थी कि चुनावी लाभ के लिए सरकार द्वारा दोनों समुदायों को खुश करने की नीति एक दुष्चक्र है, जिसे तोड़ पाना आगे चलकर बेहद मुश्किल हो जाएगा. वामपंथी सांसद सैफुद्दीन चौधरी ने तो और भी तीखे शब्दों में कहा था कि राजीव गांधी भले ही भारत को 21वीं सदी में ले जाने की बात करते हों, लेकिन उनके कामकाज से लगता है कि उनकी सोच पिछड़ी और रूढ़िवादी है.नेहरू ने राजनीति से धर्म को दूर रखने की कोशिश की थी, उनके पौत्र ने उसे चालाकी और स्वार्थपूर्ण तरीके से राजनीति में शामिल कर लिया. राजीव गांधी की नीतियां आखिर में भाजपा के काम आईं. अयोध्या में राम का भव्य मंदिर बनाने के लिए देशव्यापी आंदोलन छेड़ा गया. 1984 के चुनाव में भाजपा को महज दो सीटें मिली थीं, लेकिन सवा दशक के भीतर ही वह देश की सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी. भाजपा के पहले प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की गठबंधन सरकार की मजबूरियों के कारण वह नियंत्रित रही. भाजपा के दूसरे प्रधानमंत्री को लगातार दो बार संसद में पूर्ण बहुमत मिला और तीसरी बार थोड़ा कम पड़ने पर भी उन्होंने 'हिंदू प्रथम' एजेंडे को आगे बढ़ाने में संकोच नहीं किया. नरेंद्र मोदी और अमित शाह वैचारिक रूप से कहीं अधिक प्रतिबद्ध, संगठित और दृढ़ हैं.

कुल मिलाकर, 2026 का भारत पहले से कहीं अधिक हिंदू पाकिस्तान बनने के करीब पहुंच गया है. क्या इस प्रवृत्ति को पलटा जा सकता है और भविष्य में एक धर्मनिरपेक्ष, गैर-सांप्रदायिक राज्य को फिर से मजबूत किया जा सकता है? इसका सीधा जवाब देना मुश्किल है, लेकिन दूसरे देशों के अनुभवों को देखें तो यह दिखता है कि धर्म और राज्य के मेल का प्रयोग कहीं भी सफल नहीं रहा है. पाकिस्तान में इस्लाम को राष्ट्रीय पहचान के केंद्र में रखने से उसके आर्थिक और राजनीतिक भविष्य को भारी नुकसान पहुंचा. यह समस्या केवल इस्लामी देशों तक सीमित नहीं है. 1970 के दशक में शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता और विकास के अन्य पैमानों पर श्रीलंका भारत से काफी आगे था. अगर सिंहली-बौद्ध कट्टर राष्ट्रवाद का उभार और उससे भड़की गृह युद्ध की आग न होती तो कोलंबो और कैंडी भी बंगलूरू तथा हैदराबाद की तरह आईटी क्रांति के बड़े केंद्र बन सकते थे. इसी तरह इस्राइल भी आधुनिक यहूदी धर्म की सबसे प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के कारण हुए युद्ध अपराधों के चलते अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग पड़ता जा रहा है. किसी देश की सार्वजनिक पहचान को बहुसंख्यक धर्म के इर्द-गिर्द गढ़ना और कानून, नीतियां तथा संस्थान मुल्लाओं, पादरियों, भिक्षुओं या रब्बियों की इच्छाओं के अनुसार चलाना हर तरह के देशों में विनाशकारी साबित हुआ है.

रामचंद्र गुहा

यातना केंद्र बन रहे निजी अस्पताल

आज देश की निजी अस्पताल व्यवस्था जिस हालत में पहुंच चुकी है, वह एक व्यक्ति की पीड़ा नहीं, बल्कि करोड़ों आम नागरिकों का साझा अनुभव बनती जा रही है, जो कभी सेवा और संवेदना का क्षेत्र माना जाता था, अब मुनाफा कूटने का ऐसा संगठित उद्योग बन चुका है, जहां इंसान की बीमारी से ज्यादा उसकी जेब देखी जाती है, उसका बीमा और सामाजिक दर्जा देखा जाता है. निजी अस्पतालों की चमक-दमक, वातानुकूलित गलियारे और आधुनिक मशीनें बाहर से भले तरक्की का भ्रम पैदा करती हों, लेकिन भीतर एक ऐसी व्यवस्था काम कर रही है, जो आम आदमी के लिए किसी यातना सेल से कम नहीं है.

आज अगर कोई व्यक्ति किसी बड़े अस्पताल में इलाज कराने जाता है, तो सबसे पहला सवाल बीमारी को लेकर नहीं, बल्कि उसकी भुगतान क्षमता को लेकर होता है. रिसेप्शन पर, एडमिशन काउंटर पर या डॉक्टर से मिलने से पहले ही यह पूछा जाता है कि आपके पास स्वास्थ्य बीमा है या नहीं, आप सरकारी नौकरी में हैं या निजी क्षेत्र में, कैश में भुगतान करेंगे या कैशलेस, इनके जवाब से मरीज का पूरा इलाज तय होता है, जैसे ही यह स्पष्ट होता है कि मरीज ह्यइंश्योरेंस कवरह्ल में है या किसी सरकारी/कॉरपोरेट स्कीम के तहत आता है, अस्पताल का रवैया बदल जाता है. इलाज की जगह एक योजनाबद्ध कमाई की प्रक्रिया शुरू हो जाती है.

स्वास्थ्य बीमा का अर्थ होना चाहिए सुरक्षा, लेकिन आज कई निजी अस्पतालों के लिए यह लूट का लाइसेंस बन चुका है. जरूरत से ज्यादा महंगी दवाइयां लिख दी जाती हैं,जबकि उनके सस्ते और समान प्रभाव वाले विकल्प आसानी से उपलब्ध होते हैं. सबसे चिंताजनक स्थिति तो तब बनती है, जब मरीज की हालत में सुधार के बावजूद उसे अस्पताल में रखा जाता है. जो मरीज सामान्य स्थिति में चार-पांच दिन में घर जा सकता है, उसे जान-बूझकर दस-पंद्रह दिन तक भर्ती रखा जाता है.

सरकारी अस्पतालों की स्थिति भी खास संतोषजनक नहीं है, वहां इलाज सस्ता या मुफ्त तो है, पर भीड़, संसाधनों की कमी और अव्यवस्था के कारण मरीजों को घंटों लाइन में लगना पड़ता है. बेड की कमी, स्टॉफ की कमी और दवाइयों की अनुपलब्धता के चलते कई लोग मजबूरी में निजी अस्पतालों की ओर रुख करते हैं, इसी मजबूरी का फायदा निजी अस्पताल उठाते हैं, तो क्या हम इलाज को सिर्फ मुनाफे का साधन मानने को तैयार हैं, या फिर उसे इंसानियत और सेवा से जोड़कर देखना चाहते हैं? अगर समय रहते इस दिशा में ठोस कदम नहीं उठाए गए, तो वह दिन दूर नहीं, जब बीमारी से ज्यादा डर इलाज के बिल से लगने लगेगा.

-प्रियंका सौरभ

मनसा वाचा कर्मणा

प्रेम सफल क्यों नहीं होता

प्यार का मौसम आ रहा है. ह्यआई लव यू के संदेशे हवाओं में उछाले जाएंगे. प्रेम के बारे में इतना लिखा जाता है, फिल्मों में दिखाया जाता है, लेकिन इसके बावजूद कोई प्रेम कहानी सफल होती नहीं दिखती. लोग प्यासे के प्यासे रह जाते हैं, क्योंकि प्यार रोमांस में ही उलझकर रह जाता है. प्रेम के बारे में गलतफहमियां बहुत हैं. ओशो ने एक अद्भुत बात कही है ह्यआई लव यू के जुमले से सावधान! यह एक आक्रामक वक्तव्य है, इसके बदले में दूसरे को फौरन कहना पड़ता है. ह्यआई लव यू टू, यह एक शिष्टाचार बन गया है, इसका निहित अर्थ है कि मैं तुमसे सिर्फ इसलिए प्यार करता हूं, क्योंकि मैं चाहता हूं कि तुम मुझसे प्यार करो, इसमें एक शर्त है कि तुम्हें किसी और से प्यार नहीं करना चाहिए. हर कोई चाहता है कि मेरे प्यार में कोई हिस्सेदार न हो, यह बहुत बड़ी भ्रांति है.रोमांस सिर्फ ख्यालों में जी सकता है, जब लोग साथ रहने लगते हैं, तो रोमांस यथार्थ की आग में जल जाता है. एक दूसरे की छोटी-छोटी बातें चुभने लगती हैं, अखरने लगती हैं, प्यार करने वाले एक-दूसरे की जासूसी कर रहे होते हैं, जब प्रेम का रंग उड़ जाता है, तब प्रेमी एक-दूसरे को दोष देते हैं, फिर प्यार एक लगातार संघर्ष बन जाता है. समस्या यह है कि प्रेमी एक-दूसरे को बांधकर रखना चाहते हैं. प्रेम कोई एक वस्तु नहीं है, वह सीमित नहीं होता कि एक को मिले, तो दूसरे को नहीं मिल सकता. इंसान का संकीर्ण मन सोचता है कि प्यार को एक व्यक्ति के साथ बांधकर रखना है. ऐसा बंधा हुआ प्रेम सड़ जाता है. जिनसे प्रेम हो, उनका भरोसा करना सीखें.प्रेम की बुनियाद है भरोसा. खासकर स्त्री के लिए भरोसा बहुत बड़ी चीज है, क्योंकि वह इतनी असुरक्षा में जीती आई है कि उसका किसी पर भरोसा नहीं रहा, हर कोई उसका शोषण करता है. स्त्री या पुरुष का दिल जीतना है, तो पहले उनका भरोसा जीतें. आई लव यू की जगह कहें, आई ट्रस्ट यू. अगर भरोसा है, तो प्रेम उसके पीछे छाया की तरह चला आता है. प्यार खूबसूरत होगा, अगर वह भरोसे का हिस्सा बनकर आए. भरोसे के बिना प्यार विफल होता है, क्योंकि अंदर ही अंदर उसमें जलन, शक, अविश्वास, बंधन वगैरह छिपे हुए दुश्मन सक्रिय होते हैं.भरोसे का फूल हृदय में खिलता है. भरोसे में आपको हमेशा खुद में कमियां ही मिलेंगी; सतही प्यार में आपको हमेशा उस इंसान में कमियां मिलेंगी, जिससे आप प्यार करते हैं. भरोसे में आपका ध्यान दूसरे पर नहीं होता, खुद पर होता है कि मेरे अंदर क्या कमियां हैं, मैं कैसे अपने आपको निखारूं. भरोसा हृदय में पलता है, पनपता है. भरोसेमंद बनना बहुत बड़ा वरदान है.

अमृत साधना.

प्रतिदिन अखबार

यह पत्र मालिक, प्रकाशक नानक आहूजा द्वारा देविका वेब प्रिंटर्स, राजापेठ, अमरावती से मुद्रित कर प्रतिदिन अखबार कार्यालय, देविका परिसर, ब्राम्हण सभा के पीछे, दरोगा प्लॉट, राजापेठ, अमरावती 444606 से प्रकाशित किया है. फोन - 0721-2660155/156 E-mail:-pratidinnews @gmail.com प्रतिदिन अखबार में प्रकाशित होनेवाले विभिन्न लेख, पत्र,साहित्य, लेखकों, कवियों आदि के विचारों या तथ्यों पर आधारित होते हैं. इन लेखकों के विचारों अथवा तथ्यों से संपादक की सहमति नहीं है. संपादक पर मात्र सम्पादकीय लेखों का ही दायित्व है. संस्थापक संपादक - नानक आहूजा संपादक - प्रवीण आहूजा